Harsha - Charitha
संस्कृत साहित्य सौरभ
53
हर्ष-चरित

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
१२

बाणभट्ट-कृत

हर्ष-चरित

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५६
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

●

दूसरी बार : १९५६
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों, आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि इस पुस्तक का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे। —मंत्री

भूमिका

महाकवि बाण सम्राट हर्ष के समय (६०६–६४८ ई०) में हुए। यही एक ऐसे संस्कृत कवि हैं जिनका निश्चित समय हमें मालूम है। उन्होंने दो ग्रंथ लिखे 'हर्ष-चरित' और 'कादम्बरी'। 'हर्ष-चरित' संस्कृत-साहित्य में मिलनेवाली सबसे पुरानी ऐतिहासिक आख्यायिका है। इसमें बाण ने आरम्भ के दो उच्छ्वासों में अपना जीवन-चरित दिया है और बाकी के छः उच्छ्वासों में सम्राट हर्ष एवं उसके परिवार का वर्णन करते हुए उसके राज्य-काल की कई प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया।

बाण ने यह ग्रंथ संस्कृत गद्य में लिखा। इनकी लेखन-शैली कहीं भारी-भरकम और कहीं बड़ी सरल है। उसमें कथा-प्रवाह के साथ-साथ लगभग पचास वर्णनात्मक चित्र हैं। संस्कृत-साहित्य में ये चित्र अद्वितीय हैं। इनसे सातवीं शती का जीता-जागता परिचय प्राप्त होता है। सम्राट हर्ष, उनका राजकुल, उनकी छावनी, उनकी बहन राज्यश्री का विवाह, सेना के कूच की तैयारी, प्रयाण करता हुआ कटक-दल, विन्ध्याटवी के जंगली देहात और उनके घर, बौद्ध-भिक्षु दिवाकरमित्र का आश्रम—इनके ऐसे सजीव शब्द-चित्र 'हर्ष-चरित' में खींचे गए हैं कि पाठक को साहित्यिक आनन्द के साथ संस्कृति और इतिहास का भी अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है। बीच-बीच में बाण ने संध्या समय, प्रातःकाल, ग्रीष्म ऋतु आदि के सरस प्राकृतिक वर्णन भी दिए हैं।

प्रस्तुत कथासार हिन्दी के विद्वान डा० वासुदेवशरण ने तैयार किया है। उनका संस्कृत का अध्ययन भी बड़ा विशाल है। पाठकों को इस कथा-सार में कहीं-कहीं मूल का-सा आनन्द आवेगा।

—सम्पादक

हर्ष-चरित

आरम्भ में कवि ने शिव को प्रणाम करके वेदव्यास, सुबन्धु, सातवाहन, प्रवर-सेन, भास और कालिदास इन प्राचीन कवियों का गुण-गान किया है। फिर कथा का आरम्भ होता है।

: १ :

एक बार ब्रह्माजी खिले हुए कमल पर विराजमान ब्रह्म-लोक में देवताओं और ऋषियों के साथ विद्या-गोष्ठी का सुख ले रहे थे। वहां महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि का मन्दपाल नाम के ऋषि से कुछ झगड़ा हो गया और इसी कारण दुर्वासा के साम-गान में कुछ स्वर-भंग हो गया। उसपर सरस्वती को हँसी आ गई। बस फिर क्या था, दुर्वासा मुनि आग-बबूला हो गए। उन्होंने सरस्वती को शाप देने के लिए हाथ में जल ले लिया। सरस्वती की सखी सावित्री ने तथा और कई लोगों ने रोकना चाहा, किन्तु दुर्वासा ने शाप दे ही डाला—"ओ दुर्विनीत, तेरा विद्या का घमंड चूर करता हूं। जा, तू मृत्युलोक में जन्म ले।" इसपर ब्रह्मा ने दुर्वासा से कहा, "ब्रह्मन्, आपने जो किया वह साधुओं का मार्ग नहीं।"

फिर सरस्वती से बोले, "बेटी, दुःख न करो। यह सावित्री तुम्हारे साथ जायगी।"

इसके बाद सरस्वती और सावित्री दोनों ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में उतरीं। यहां आकर दंडक वन के समीप विन्ध्याचल से बहनेवाले शोण नद के तट पर उन्होंने अपना आश्रम बनाया और वहीं शिव के ध्यान में तप करती हुई रहने लगीं।

कुछ समय बीतने पर एक दिन सवेरे सरस्वती ने घुड़सवारों की एक टुकड़ी को आते हुए देखा। उनका नेता दधीच नामक एक अति सुन्दर युवक था। उसके घोड़े पर सवार एक अंग-रक्षक चल रहा था। वे दोनों घोड़े से उतरकर सरस्वती और सावित्री के पास आए। शिष्टाचार के बाद अंग-रक्षक ने अपने साथी का परिचय देते हुए कहा, "यह च्यवन और सुकन्या का पुत्र दधीच है। मैं इसका सेवक विकुक्षि हूं। शोण के उस पार च्यवन वन तक हमें जाना है। आप भी कृपया अपना परिचय दें।" सावित्री ने इतना ही कहा, "आर्य, समय पर आप सब जानेंगे।"

कुछ दिन बाद उसी दधीच से सरस्वती का विवाह हुआ।

एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वे दोनों साथ रहे और सरस्वती ने सारस्वत नामक पुत्र को जन्म दिया।

शाप की अवधि पूरी हो जाने पर वह ब्रह्मलोक को लौट गई। दधीच के भाई की पत्नी अक्षमाला ने सारस्वत का पालन किया। सारस्वत ने अक्षमाला के पुत्र वत्स के प्रेम से प्रीतिकूट नामक एक गांव बसाया और स्वयं तप करता हुआ परलोक को चला गया। यही प्रीतिकूट बाण की जन्मभूमि हुई।

वत्स से वात्स्यायन वंश का प्रादुर्भाव हुआ। उस वंश में जो ब्राह्मण हुए वे गृहस्थ होते हुए भी मुनियों की वृत्ति रखते थे। उसी वात्स्यायन वंश में कुबेर नामक ब्राह्मण ने जन्म लिया। कुबेर का पुत्र पाशुपत और पाशुपत का अर्थपति हुआ। अर्थपति के ग्यारह पुत्रों में आठवें चित्रभानु की पत्नी राजदेवी से बाण का जन्म हुआ। बालपन में ही उसे माता का वियोग सहना पड़ा। पिता ने मातृ-स्नेह से उसका पालन किया और उपनयन आदि सब संस्कार यथासमय किए। बाण की आयु पूरे चौदह वर्ष की भी न हुई थी कि पिता भी स्वर्ग सिधार गए। उस समय तक बाण का विवाह हो चुका था।

पिता की मृत्यु के बाद बाण ने कुछ समय दुखी मन से घर पर ही काटा। धीरे-धीरे जब शोक कम हुआ तो बाण के स्वतन्त्र स्वभाव ने जोर मारा। यौवन आरम्भ हो रहा था, मन में अल्हड़पन और चपलता के साथ नई-नई बातें जानने का शौक था। पिता के न रहने से एका-

एक जो छूट मिली उसका यह फल हुआ कि बाण घुमक्कड़ हो गया। घर में बाप-दादों की कमाई का अच्छा पैसा था। गांव में पढ़ाई का सिलसिला भी जारी था। किन्तु ये सब सुविधाएं भी उसके तूफानी स्वभाव के कारण बाण को घर में रोककर न रख सकीं।

बाण बहुत वर्षों तक बाहर घूमता रहा। साथ में लम्बी-चौड़ी मित्रमंडली भी थी। उनमें कुछ परिचारक, कुछ कवि और विद्वान, कुछ कलापारखी शिल्पी, कुछ नाचगान के प्रेमी, कुछ वैद्य-मंत्र-साधक और साधु संन्यासी थे। इस प्रवास में बाण ने सब तरह की दुनिया देखी, अनेक लोगों से मिला और घाट-घाट का पानी पिया। बड़े-बड़े राजकुलों का हाल-चाल जाना। शिक्षा-केन्द्रों में समय बिताया, कलावन्तों की गोष्ठियों में उपस्थित हुआ। देशाचार और लोकाचारों के अनुभव से धनी बनकर वह फिर अपने गांव को लौट आया। उसके स्वभाव में रईसी का पुट था। दूसरे, कुल के अनुरूप विद्या की प्रवृत्ति थी। तीसरे, साहित्य और कलाओं से अनुराग था। चौथे, मन में छैलपन भी था। सरल, सजीव और स्नेही प्रकृति के कारण बाण की काव्यप्रतिभा में चार चांद लग गए।

: २ :

एक दिन घोर गर्मी के समय जब बाण खा-पीकर निश्चिंत बैठे थे तो तीसरे पहर उन्हें समाचार मिला कि

सम्राट हर्ष के छोटे भाई कृष्ण का दूत उनका निजी सन्देश लेकर आया है। बाण ने तुरन्त उसे अन्दर लाने के लिए कहा। मटियाले रंग की पेटी से कसा हुआ लहंगे-नुमा वस्त्र पहने हुए उस दूत के सिर पर एक चिट्ठी डोरे से लपेटकर बांधी गई थी, जिसके दोनों छोर पीठ पर लहरा रहे थे। कुशल-समाचार के बाद दूत ने वह लेख खोलकर बाण को दिया। उसमें लिखा था, "मेखलक द्वारा जो सन्देश भेज रहे हैं उसे सुन-समझकर शीघ्र यहां आओ। विलम्ब न करना। पत्र में इतना ही लिखा जाता है। शेष मौखिक मालूम होगा।"

बाण सबकुछ ताड़ गए। नौकर-चाकरों को हटा दिया और सन्देश पूछा। दूत ने अपने स्वामी कृष्ण की ओर से कहा, "तुम मुझे बन्धु के समान प्रिय हो,तुम्हारे पीठ-पीछे दुष्टों ने सम्राट हर्ष को तुम्हारे विषय में उलटा-सीधा सिखा दिया है। ऐसा कौन है जिसके मित्र-शत्रु नहीं होते ? बहुत-से मूर्खों से एक-सी बात सुन-कर हर्ष का मन भी तुम्हारी ओर से फिर गया है। वह और करते भी क्या ? पर दूर होने पर भी मैं तुम्हें भली-भाँति जानता हूँ। मैंने सम्राट को समझाया कि थोड़ी-बहुत भूल सबसे होती है। उन्होंने मेरी बात मान ली। अब तुम देर न करके शीघ्र राजकुल में आओ।"

सन्देश सुनकर बाण ने उस समय तो कुछ नहीं

कहा, लेकिन रात को शय्या पर लेटे हुए अकेले में सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए ? सम्राट को मेरे बारे में भ्रांति हुई है। इसलिए कृष्ण ने मुझे बुला भेजा है। पर राजकुल की सेवा बजाना मेरे बस का नहीं है। मुझे चापलूसी नहीं आती। किन्तु जाना भी अवश्य चाहिए। भगवान शंकर सब भली करेंगे। यह सोचकर उसने जाने का पक्का इरादा कर लिया।

दूसरे दिन सवेरे स्नान-पूजन करके देवताओं को मनाकर और सब सगे-सम्बन्धियों से मिलकर उसने प्रस्थान किया। कुछ ही दिन में वह राप्ती के किनारे मणितारा गांव से हर्ष की छावनी में जा पहुंचा। वहां स्नान-भोजन से छुट्टी पाकर राजकुल में गया और तीन चौक पार करके, भीतरी आस्थान मंडप (दरबारे खास) के सामनेवाले आंगन में उसने हर्ष के दर्शन किए।

हर्ष को देखकर बाण के मन में कितने ही विचार एक साथ दौड़ गए। यही क्या वह स्वनामधन्य परमेश्वर हर्ष हैं, जिन्होंने पूर्व राजाओं को अपने गुणों से जीत लिया है ? इस प्रकार सोचते हुए पास जाकर उसने 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया। हर्ष ने बाण की ओर देखा और यह जानकर कि यही वह बाण है उसने कहा, "मैं इसे नहीं देखना चाहता। पहले यह मेरी अनुकूलता प्राप्त करे।" यह कह हर्ष ने अपनी दृष्टि फेर ली और पीछे बैठे

हुए मालव राजकुमार से बाण के विषय में कहा, "यह भारी भुजंग (गुंडा) है।" हर्ष की बात सुनते ही मंडप में सन्नाटा छा गया। इस तीखे वचन से बाण तिलमिला उठा। क्षण भर चुप रहकर उसने कड़े शब्दों में इस बात का प्रतिवाद किया और अपने बारे में सच्ची स्थिति बताते हुए कहा, "हे देव, आप ऐसा कैसे कहते हैं, जैसे मेरे बारे में सच्ची बात का पता न हो या आप दूसरों के कहने में आ गए हों! बड़ों को स्वयं सच्ची बात को देखना चाहिए। आप मुझे साधारण व्यक्ति की तरह मत समझिए। मैंने सोमपायी वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में जन्म लिया, उचित समय पर उपनयन आदि वैदिक संस्कार प्राप्त किए और सांगवेद तथा शास्त्रों को पढ़ा। जबसे मेरा विवाह हुआ तबसे मैं नियमित गृहस्थ हूं। बताइए, मुझमें क्या भुजंगपना है ?[1] मैं इस बात से इनकार न करूंगा कि चढ़ते यौवन में मुझसे कुछ चपलता हुई, पर वह ऐसी न थी, जिसका इस लोक या परलोक से विरोध हो। फिर मुझे उसका पश्चात्ताप भी है। समय आने पर आप स्वयं मेरे बारे में सबकुछ जान लेंगे।" इतना कहकर बाण चुप हो गया। हर्ष बाण के वचनों से

---

१. 'का मे भुजंगता।' इस छोटे वाक्य के तीन अर्थ हैं—१. मेरे जीवन में भुजंगता (गुंडापन) क्या है ? २. भुजंगता उसमें रहती है जो कामुक होता है, मुझमें नहीं। ३. मैंने किस स्त्री का अपनी भुजाओं में आलिंगन किया है ?

कुछ नम्र हुए। उत्तर में इतना ही कहा, "हमने ऐसा ही सुना था।" और मंडप में से उठ गए। बाण भी अपने निवास-स्थान को लौट आया। वह मन में सोचने लगा कि हर्ष मुझसे अप्रसन्न नहीं हैं। होते तो दर्शन ही क्यों देते ? अब मैं ऐसा करूंगा, जिससे मेरे बारे में वह ठीक बात जान लें।

कुछ दिनों में हर्ष को बाण के स्वभाव का ठीक पता चल गया। तब बाण राजभवन में आकर रहने लगा। हर्ष की उससे परम प्रीति हो गई।

: ३ :

बांण गर्मी की ऋतु में हर्ष के दरबार में गया था। लगभग चार महीने वहां रहकर शरद् के शुरू में वह फिर अपने गांव लौट आया।

सम्राट् ने उसका सम्मान किया है, इस बात से प्रसन्न होकर उसके भाई-बन्धु उससे मिलने आए। अपनेको फिर बन्धु-बान्धवों के बीच पाकर बाण का हृदय खिल उठा। उसने प्रसन्न होकर सबका कुशल-समाचार पूछा।

दोपहर के भोजन के बाद वे फिर इकट्ठे हुए और जब वायुपुराण का पाठ हो चुका तो बाण के चचेरे भाइयों ने, जिनका नाम गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल था, एक-दूसरे की ओर देखा, जैसे कुछ कहना चाहते हों। चारों में छोटा श्यामल बाण को बहुत प्यारा

था। बड़ों का इशारा पाकर उसने बाण से प्रार्थना की कि कृपा कर महाराज हर्ष का चरित हम सबको सुनाइए। इस प्रार्थना को सुनकर बाण ने पहले तो अपनी असमर्थता प्रकट की, किन्तु फिर कहा, "आज तो दिन समाप्त हो गया है। कल सुनाऊंगा।"

अगले दिन सवेरे संध्या-वन्दन से निवृत्त होकर सब लोग इकट्ठे हुए और बाण को घेरकर बैठ गए। तब उसने हर्षचरित सुनाना आरम्भ किया।

× × ×

श्रीकंठ जनपद की राजधानी स्थाण्वीश्वर थी। वहां के किसान सब प्रकार से सम्पन्न थे। चारों ओर पौंड़ों के खेत फैले रहते थे। खलिहानों में कटी हुई फसल के ढेर लगे रहते थे। जंगल गोधन से भरा हुआ था। गायों के गले में बँधी हुई टल्लियां बजा करती थीं। भैंसों की पीठ पर बैठकर ग्वाले गीत गाया करते थे। ऐसे उस देश में परम माहेश्वर पुष्पभूति नाम के राजा हुए। वहां घर-घर में शिव-पूजा का प्रचार था। वहींपर भैरवाचार्य नामक दक्षिण से आया हुआ एक महाशैव रहता था। उसकी कीर्ति सुनकर राजा उससे मिलने गए। अगले दिन भैरवाचार्य भी उनसे मिलने आए।

एक दिन भैरवाचार्य का शिष्य राजा के पास आया और बोला, "यह अट्टहास नामक तलवार है, जो आपके

योग्य है। कृपया ग्रहण कीजिए।" राजा उसे पाकर प्रसन्न हुए। कुछ समय और बीता तो एक दिन भैरवाचार्य ने एकान्त में राजा से कहा, "मैंने महाकाल हृदय नामक मन्त्र का एक कोटि जप किया है। उसकी सिद्धि वेताल-साधन से होती है। आप उसे कर सकते हैं। इसमें तीन शिष्य और आपकी सहायता करेंगे।" राजा ने प्रसन्न हो इसे स्वीकार किया। भैरवाचार्य ने कहा, "अगले कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात में महाश्मशान के पासवाले मन्दिर में आप मुझसे मिलिए।" राजा ने वैसा ही किया और अकेला ही हाथ में तलवार लेकर नीले वस्त्र पहने नगर से बाहर उस स्थान पर आया।

वहां भैरवाचार्य घोर साधना कर रहा था। उसी समय एक चमत्कार हुआ। जहां वह बैठा था उससे कुछ दूर पर धरती फट गई और उसमें से एक काला पुरुष निकला। उसके शरीर पर चन्दन के थापे लगे थे। दाहिना हाथ तिरछा फेंकते हुए और दाहिनी जांघ मोड़-कर उसे थपथपाते हुए उसने कहा, "मैं श्रीकंठनाग हूं, इस देश का देवता।" उसने भैरवाचार्य को ललकारा, "ऐ दुर्बुद्धि, मुझे बलि दिये बिना तू सिद्धि चाहता है?" राजा पुष्पभूति ने निडर भाव से उसे डपटा और श्रीकंठ-नाग भी राजा से भिड़ गया। राजा ने उसे दे मारा। इतने में पुष्पभूति ने देखा कि सामने से सजी-धजी एक

स्त्री आ रही है। उसने उससे पूछा, "भद्रे, तू कौन है?" स्त्री ने उत्तर दिया, "मैं लक्ष्मी हूँ। तेरे पराक्रम से प्रसन्न होकर आई हूं। जो चाहे, वर मांग।" राजा ने लक्ष्मी से यही वर मांगा कि भैरवाचार्य को सिद्धि मिले। देवी ने स्वीकार किया और राजा की भगवान शिव में अटूट भक्ति देखकर दूसरा वरदान और देते हुए कहा, "हे राजन्, तुम्हारे वंश में हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा। हरिश्चन्द्र के समान वह सारी पृथ्वी का भोग करेगा।"

इसके बाद भैरवाचार्य शरीर छोड़कर विद्याधर की गति को प्राप्त हुआ। श्रीकंठनाग भी यह कहकर कि जब काम पड़े मुझे आज्ञा दीजिएगा, धरती में समा गया।

: ४ :

सम्राट पुष्पभूति के वंश में अनेक राजा हुए। उसी वंश में प्रभाकरवर्द्धन नाम का राजाधिराज हुआ। उसकी महादेवी का नाम यशोवती था। वह सूर्य का भक्त था और प्रतिदिन सवेरे स्नान करके रक्तकमल से सूर्य की पूजा करता था।

इनके बड़े कुमार का नाम राज्यवर्द्धन और छोटे का नाम हर्षवर्द्धन था। हर्ष के जन्म के समय ज्योतिषी ने बताया, "इसके सब ग्रह उच्च हैं और यह सब चक्रवर्त्तियों में अग्रणी होगा।" इसके जन्म के समय धूमधाम से पुत्र-जन्म का उत्सव मनाया गया।

हर्ष शनैः-शनैः बढ़ने लगा। जब वह धाय की उंगली पकड़कर चलने योग्य हो गया और राज्यवर्द्धन छठे वर्ष में लगा तब राजा के घर एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम राज्यश्री रक्खा गया। इसी समय यशोवती के भाई ने अपने पुत्र भंडि को राज्यवर्द्धन और हर्ष के संगी-साथी के रूप में रहने के लिए दरबार में भेजा। एक बार पिता प्रभाकरवर्द्धन ने अपने दोनों पुत्रों को प्यार करते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे सखाओं के रूप में मालव के दो राजकुमारों को नियुक्त किया है।" उसी समय कुमारगुप्त और माधवगुप्त नामक दो भाई उपस्थित हुए और राज्यवर्द्धन और हर्ष के साथ रहने लगे।

राज्यश्री भी नृत्य-संगीत आदि कलाओं को सीखती हुई बढ़ने लगी। जब वह युवती हुई तब कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा के बड़े बेटे ग्रहवर्मा ने इसकी याचना की। रानी की अनुमति लेकर शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मा के भेजे हुए दूत के हाथ पर कन्या-दान का जल डालकर राजा ने कन्या का सम्बन्ध निश्चित कर दिया।

ब्याह के दिन निकट आए तो दोनों राजकुलों में तैयारियां होने लगीं। थानेश्वर का रनिवास ब्याह की धूम से भर गया। सब लोगों को पान के बीड़े, इत्र के फाहे और फूल बांटे जाने लगे। देश-देश के चतुर

शिल्पी बुलाये गए। अनेक राजा भेंट का सामान लाये। कोठरी में इन्द्राणी की मूर्ति और दई-देवता पधराए गए। सूत्रधार ब्याह की वेदी बनाने लगे। पोतनेवाले महल की दीवार और शिखरों पर सफेदी पोतने लगे। दहेज के योग्य हाथी-घोड़ों की जांच होने लगी। ड्योढी के बाहर बैठे सुनारों के ठट्ठ ठक्-ठक् सोना घड़ने लगे। चित्रकार मंगल-चित्र लिखने लगे। खिलौने बनानेवाले भांति-भांति के मिट्टी के खिलौने बनाने लगे। सामन्तों की सती स्त्रियां बड़े सवेरे ही राजमहल में आकर ब्याह का कामकाज करने में लग गईं। कुछ वर-वधू का नाम ले मंगलाचार गाने लगीं। कुछ सूत की लच्छियों से कलावें रंगने लगीं। कुछ उबटन और मुखालेपन तैयार करने लगीं। कुछ लौंग और कपूर की मालाएं गूंथने लगीं। कुछ कलसों पर मांड मांडने लगीं। ब्याह के लिए बहुत भांति के बांधनू की रंगाई के, फूल-पत्तियों की छपाई के, कुमकुम के थापों की छपाई के या मरोड़कर चुन्नट डाले हुए रेशमी,सूती आदि वस्त्र तैयार होने लगे।

ब्याह के दिन सवेरे मुख्य प्रतिहारी ने सूचना दी कि जामाता के यहां से उनका ताम्बूलदायक आया है। उसके भीतर आने पर राजा ने कुमार ग्रहवर्मा की कुशल पूछी। उसने निवेदनकिया,"देव,वह आरहे हैं और आपको प्रणाम कहते हैं।" राजा ने कहा,"रात्रि के पहले पहर में विवाह

की लग्न साधनी चाहिए।" सायंकाल ग्रहवर्मा के साथ बरात राजद्वार पर आई। राजा ने द्वाराचार कर सबका स्वागत किया और वर को नीचे उतार आदर के साथ भीतर ले गए। तभी ज्योतिषियों ने कहा, "लग्न का समय निकट है। जामाता कोहबर में चलें।" ग्रहवर्मा कोहबर के द्वार पर पहुंचे। वहां स्त्रियों ने उनसे लोकाचार कराया। लाल अंशुक ओढ़े हुई राज्यश्री का हाथ पकड़कर वह कोहबर से बाहर आया और विवाह-मंडप में रची हुई वेदी के पास गया। वहाँ पुरोहित ब्राह्मणों ने लाजा होम आदि के साथ विवाह की सब विधि सम्पन्न कराई। विवाह-विधि समाप्त होने पर जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया और दोनों वासगृह में प्रविष्ट हुए। फिर सुसराल में दस दिन रहकर गृहवर्मा बहू को बिदा कराकर और दहेज में दी हुई सामग्री लेकर अपने स्थान को लौट आया।

: ५ :

जब ज्येष्ठ राजकुमार राज्यवर्द्धन कवच पहनने की आयु प्राप्त कर चुका तो पिता प्रभाकरवर्द्धन ने उसे हूणों के साथ युद्ध करने के लिए सेना देकर उत्तरापथ की ओर भेजा। हूण इस समय काश्मीर और गन्धार में जमे बैठे थे। उनसे भारत के सीमा-प्रदेश को मुक्त कराना आवश्यक था। उस समय हर्ष की आयु लगभग

पन्द्रह वर्ष की थी। कुछ दूर तक वह भी राज्यवर्द्धन के साथ गया, पर उसे शिकार खेलने का शौक हुआ और वह भाई का साथ छोड़कर हिमालय की तराई में कुछ दिन आखेट करता रहा। एक रात उसने भयंकर स्वप्न देखा। एक शेर आग में जल रहा है और शेरनी बच्चों को छोड़कर उसी आग में कूद रही है। वह घबराकर उठ बैठा। शिकार में भी मन न लगा। दोपहर के समय उसे एक पत्र मिला। उसे लेकर उसने स्वयं बांचा। पिताजी दाह-ज्वर से पीड़ित थे। हर्ष को बड़ा दुःख हुआ और उसने तुरन्त कूच का शंख बजवाया और जल्दी-जल्दी मार्ग लांघता हुआ वह अगले दिन थानेश्वर की छावनी में आ पहुंचा। वहां सब कामकाज बन्द था। वह छावनी पार करके राजद्वार पर आया। जैसे ही वह घोड़े से उतरा, उसने सुषेण नामक वैद्य को बाहर आते हुए देखा और पिता की हालत पूछी। सुषेण ने कहा, "अभी तो अवस्था में सुधार नहीं है।" वह तुरन्त पिता के पास गया, जो इस समय रानी यशोवती के महल में थे। वहां उस समय बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। हर्ष को देखकर प्रभाकर-वर्द्धन ने उठने की कुछ चेष्टा की, हर्ष ने उन्हें प्रणाम किया। वह कठिनाई से इतना ही कह सके, "वत्स, बहुत दुर्बल जान पड़ते हो।" भंडि ने बताया कि हर्ष ने तीन दिन से भोजन नहीं किया है। यह सुन प्रभाकरवर्द्धन ने रोते

हुए कहा, "पुत्र, उठो। आवश्यक क्रियाएं करो। तुम्हारे आहार करने के बाद ही मैं भी पथ्य लूंगा।" क्षण भर ठहरकर हर्ष नीचे उतरा और अपने स्थान पर जाकर उसने दो-चार कौर खाये। फिर वैद्यों को अलग बुलाकर पिता की हालत पूछी। वैद्य ने कहा, "देव, कल निवेदन करूंगा।" रात में राजा की हालत और बिगड़ती गई। सबेरे हर्ष ने बड़े भाई को बुलाने के लिए तेज सांडनी-सवारों को दौड़ाया।

दुःख की उस अवस्था में राजभवन की हँसी-खुशी जाती रही। हर्ष भी कपड़े से मुँह ढककर अपने पलंग पर पड़ गया। उसी समय यशोवती की प्रतिहारी ने आकर सूचना दी, "महादेवी ने सम्राट के जीते जी सती होने का भयंकर निश्चय कर लिया है।" यह दारुण समाचार सुनते ही हर्ष झट मां के पास दौड़ा आया। वह सती-वेश में थीं। दूर से ही आँखों में आँसू भरकर उसने कहा, "माँ, मुझ अभागे को तुम भी छोड़कर जा रही हो। कृपा कर इस विचार को दूर करो।" यह कहकर चरणों में गिर पड़ा। रानी उसे देखकर शोक से विह्वल हो गई और रोने लगी। दुःख कुछ कम होने पर रानी ने पुत्र के आँसू पोंछे और बोली "हे पुत्र, मैं अविधवा ही मरना चाहती हूँ। मुझे मत रोक।" यह कह हर्ष के पैरों में गिर पड़ी। हर्ष ने झट अपने पैर खींच लिये और झुककर माता को उठाया।

माता का असह्य शोक और दृढ़ निश्चय समझकर वह चुप हो गया। रानी यशोवती ने मुँह धोया और पैदल ही चलकर सरस्वती के किनारे गईं और वहीं चिता बनाकर सती हो गईं।

माता के मरण से दुखी हर्ष पिता के पास गया। प्रभाकरवर्द्धन के शरीर की प्राण-शक्ति क्षीण हो चुकी थी। उसकी पुतलियां फिर रहीं थीं। "पुत्र, यह पृथ्वी तुम्हारी है"—यह कहते-कहते उन्होंने आँखें मींच लीं। सम्राट की मृत्यु के बाद स्वयं हर्ष, सामन्त, पौर और पुरोहित कन्धा देकर अर्थी को सरस्वती के किनारे ले गए। और उसे चिता पर रखकर दाह-संस्कार किया। उसने वह भयंकर रात्रि नंगी धरती पर बैठे-बैठे बिताई। इसके बाद सम्राट के फूल चुनकर उन्हें विविध तीर्थ-स्थानों और नदियों में भेजा। अगले दिन सवेरे उठकर हर्ष ने फिर सरस्वती तट पर जाकर स्नान किया और पिता को जलांजलि देकर पैदल राजभवन को लौटा। तब अनेक हित-मित्र और साधु-संन्यासी हर्ष के साथ समवेदना प्रकट करने और समझाने के लिए आए। उन लोगों के समझाने-बुझाने से हर्ष का शोक कुछ कम हुआ। तब उसके मन में परदेस गए राज्यवर्द्धन के बारे में अनेक विचार आने लगे। उसे भय हुआ कि कहीं वह लौटने का विचार छोड़कर बन को ही न चला जाय। आशंका भरे मन से

वह बड़े भाई के आने की बाट जोहने लगा।

: ६ :

इस प्रकार राज्यवर्द्धन की राह देखते हुए हर्ष ने अशौच के दिन पूरे किए। ब्राह्मणों को जिमाकर शय्या-दान दिया और प्रभाकरवर्द्धन के निजी हाथी को वन में छोड़ दिया गया। उसी समय हूण-युद्ध में घायल होकर राज्यवर्द्धन भी लौट आया। पिता की मृत्यु के शोक से उसकी दशा और भी खराब थी। हड़बड़ी में आने के कारण निजी सेवक पीछे छूट गए थे। राज्यवर्द्धन भीतर आकर बैठ गया। बहुत देर चुपचाप रहने के बाद उठा और स्नान किया। हर्ष ने भी स्नान किया और तब दोनों भाई धरती पर बिछे हुए कालीन पर पास-पास बैठ गए। कुछ प्रधान सामन्तों ने, जिनकी बात टाली न जाती थी, कह-सुनकर उन्हें भोजन कराया।

अगले दिन सवेरे राज्यवर्द्धन ने सामन्तों के सामने हर्ष से कहा, "मेरी इच्छा किसी आश्रम में चले जाने की है। तुम राज्य का भार संभालो। मैंने आज से शस्त्र छोड़ा।" यह कह खड्गग्राही के हाथ से झट तलवार लेकर धरती पर फेंक दी। यह देखकर हर्ष का हृदय शोक से फट गया। उसके मन में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ। पर वह कुछ कह न सका और मुँह नीचा किये बैठा रहा। उसी समय आज्ञा पाकर तोशाखाने के अधि-

कारी ने रोते हुए वल्कल ला रक्खा। तभी राज्यश्री का एक परिचारक रोता-पीटता सभा में आया। राज्यवर्द्धन के पूछने पर उसने किसी प्रकार कहा, "देव, जिस दिन से सम्राट के मरने की खबर फैली उसी दिन दुष्ट मालव-राज ने ग्रहवर्मा को मार डाला और राज्यश्री के पैरों में बेड़ी डालकर उसको कान्यकुब्ज के कारावास में डाल दिया। ऐसा सुना है कि वह थानेश्वर पर भी हमला करना चाहता है।"

इस समाचार से राज्यवर्द्धन का विषाद हट गया और शोक की जगह वह क्रोध और वीर-रस से भर उठा। उसका बांया हाथ म्यान पर और दाहिना हाथ तलवार की मूँठ पर पड़ा। उसी मुद्रा में उसने हर्ष से कहा, "राज्य को तुम संभालो। मैं तो आज ही मालवराज का नाश करने के लिए चला। मेरे लिए अब यही चीवर और यही तप है। सब सेना यहीं रहेगी। अकेला यह भंडि दस हजार घुड़सवार लेकर मेरे पीछे आयगा।" यह कह तुरंत कूच का डंका बजाने की आज्ञा दी। हर्ष ने आग्रह से कहा, "कृपया मुझे भी साथ ले चलें।" किन्तु राज्यवर्द्धन ने उत्तर दिया, "हे तात, छोटे शत्रु के लिए भारी तैयारी करना उसे बड़प्पन देना होगा। हिरणों को मारने के लिए शेरों का झुंड नहीं चाहिए। तुम ठहरो, मुझे अकेले ही शत्रु-नाश करने दो।" यह कह उसी दिन शत्रु पर चढ़ाई करदी।

राज्यवर्द्धन के चले जाने पर हर्ष अनमना होकर समय बिताने लगा। एक दिन स्वप्न में उसने एक लोहे का खम्भा फटकर गिरता हुआ देखा। वह घबराकर उठ बैठा और सोचने लगा, "क्यों ये बुरे सपने अब भी मेरा पीछा नहीं छोड़ते?" लेकिन वह बाहर आकर बैठा ही था कि राज्यवर्द्धन का एक निजी सवार वहां आ पहुंचा। उसने बताया कि राज्यवर्द्धन ने मालव की सेना को खेल-खेल में जीत लिया था, किन्तु गौड़ के राजा ने बाहरी आव-भगत से विश्वास जमाकर उसे अकेले में शस्त्रहीन पाकर मार डाला।

इतना सुनना था कि हर्ष में कोप का ज्वालामुखी फूट पड़ा। वह अत्यन्त भीषण रूप धरकर गौड़ नरेश को बुरा-भला कहने लगा। पास में बैठे हुए सेनापति सिंह-नाद ने उसका समर्थन किया और उसे युद्ध के लिए उत्तेजित किया। इसपर हर्ष ने प्रतिज्ञा की, "यदि कुछ ही दिनों में मैं इस धरती को गौड़रहित न बना दूँ तो आग में पतंगे की तरह अपने शरीर को जला डालूंगा।" यही नहीं, उसने पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में चित्रकूट, पश्चिम में अस्ताचल और उत्तर में गन्धमादन तक के सब राजाओं को लिखवा भेजा कि या तो वे उसकी अधीनता स्वीकार करके कर दें या युद्ध के लिए तैयार रहें।

इस प्रतिज्ञा से हर्ष का मन हलका हुआ। अगले दिन उसने बाहर गई हुई राज-सेना को तुरन्त छावनी में लौटाने की व्यवस्था करने की आज्ञा दी और राज्य का सब प्रबन्ध ठीक किया। उसके बाद दिग्विजय के लिए सेना के कूच की आज्ञा दी।

: ७ :

हर्ष की इस यात्रा को बाण ने चार दिशाओं की विजय का नाम दिया है। उस काल की राजनैतिक पद्धति के अनुसार चतुरंत दिग्विजय के बाद विजयकर्ता को महाराजाधिराज की पदवी प्राप्त होती थी। हर्ष शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक पूजा करके प्रजा की जय-जयकार के बीच राजभवन से निकला और नगर से बाहर सरस्वती के किनारे घास-फूस के बंगलों और तम्बू-डेरों में ठहरा। यहांपर उसने सौ गांव ब्राह्मणों को दान में दिये।

जब रात का तीसरा पहर समाप्त हो रहा था तो कूच का नगाड़ा बजा। उसपर जोर-जोर से डंके की आठ चोटें मारी गईं। उससे सूचित हुआ कि पहले दिन का पड़ाव आठ कोस की दूरी पर होगा। डंके के साथ ही कूच के बाजे बजने लगे। छावनी में बारी-बारी से सब लोग जागे। डेरे-डंडे उठाए जाने लगे। लद्दू हाथी, घोड़े और छकड़ों पर सामान लदने लगा। भांति-भांति की

सवारियां चलने लगीं। सजी-बजी सेना के हरावल दस्ते चौड़े छोपे हुए निशानोंवाले वेश से सजकर चलने लगे।

प्रयाण के समय देश-देश के राजा हर्ष की सहायता के लिए इकट्ठे हुए। वे हाथी-घोड़ों पर सवार भांति-भांति की वेश-भूषा पहने थे। अगले पड़ाव पर कामरूप के कुमार भास्करवर्मा के दूत के आने की सूचना मिली। हर्ष ने उसे बुला भेजा और पूछा, "श्रीमान् कुमार तो कुशल से हैं?" उसने उत्तर दिया, "जब देव इतने गौरव से पूछ रहे हैं तो वह आज सब प्रकार कुशल-युक्त हुए।" फिर उसने कहा, "कुमार ने अपने पूर्वजों द्वारा उपार्जित यह छत्र आपकी सेवा में भेजा है।" जब हर्ष छत्र देख चुके तो सेवकों ने अन्य उपहारों को भी उघाड़कर दिखाया, जिनमें अनेक आभूषण, चूड़ामणि, श्वेत हार, चिट्टे रंग के क्षौम वस्त्र, मधु पीने के बर्तन, चमड़े की ढालें, भोजपत्र की तरह मुलायम रेशमी थान, जामदानी के बने हुए नरम तकिए जिनके भीतर पक्षियों के रोयें भरे थे, बेंत के बुने आसन, सुभाषितों से भरी हुई पुस्तकें, काले अगरू के तेल से भरी हुई मोटे बांस की नलियां, सफेद कपूर के डले, कस्तूरी के नाफे आदि बहुमूल्य सामग्री थी। उपहार स्वीकार करके उसने दूत से आराम करने के लिए कहा और रात्रि के समय उसने कुमार का संदेश पूछा। दूत ने कहा, "देव,

शिव के भक्त कुमार का यह संकल्प है कि शिव के अतिरिक्त दूसरे किसीके चरणों में प्रणाम न करूंगा। आप जैसे अद्वितीय वीर की मित्रता से ही यह इच्छा सफल हो सकती है। इसलिए कुमार आपके साथ स्थायी मैत्री चाहते हैं।"

हर्ष ने कहा, "कुमार का संकल्प श्रेष्ठ है। उससे मेरी प्रसन्नता और बढ़ी है। ऐसा यत्न करो कि अधिक समय तक हमें कुमार से मिलने की उत्कण्ठा न सहनी पड़े।" दूत ने कहा, "देव कुछ ही दिनों में आप उनको यहाँ आया हुआ जानें।" हर्ष ने सवेरे अपने प्रधान दूत के साथ वापसी भेंट सामग्री भेजते हुए दूत को बिदा किया।

फिर एक दिन हर्ष ने सुना कि राज्यवर्द्धन की सेना ने मालवराज की जिस सेना को जीत लिया था उस सबको अपने वश में करके भंडि लौट आया है और पास ही पहुंच गया है। कुछ समय बाद भंडि राज्यद्वार पर आया। वहीं घोड़े से उतरकर मुँह लटकाए, उसने भीतर प्रवेश किया। दूर से ही ढाड़ मारकर वह हर्ष के पैरों में गिर पड़ा। हर्ष ने लड़खड़ाते पैरों से आगे बढ़कर उसे उठाया और हाल पूछा। भंडि ने कहा, "देव, राज्यवर्द्धन की मृत्यु के बाद जब गुप्त नाम के व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अधिकार कर लिया तो राज्यश्री पकड़ी गई। पर वह किसी तरह छूटकर विन्ध्याचल के जंगल में चली

गई। ऐसा मैंने लोगों से सुना। उसे ढूंढ़ने के लिए गये हुए लोगों में से अभी कोई लौटकर नहीं आया।" हर्ष ने उत्तेजित होकर कहा, "औरों के ढूंढ़ने से क्या? जहां भी वह हो उसे ढूँढ़ने मैं स्वयं जाऊंगा। तुम सेना लेकर गौड़ पर चढ़ाई करो।" दूसरे दिन उसने राज्यश्री के ढूंढ़ने के लिए प्रस्थान किया और कुछ ही पड़ावों के बाद विन्ध्याटवी के एक वन-ग्राम में पहुंचकर रात को वहीं ठहरा।

: ८ :

उस गांव में रात बिताकर दूसरे दिन हर्ष ने वन में प्रवेश किया और इधर-से-उधर घूमता रहा, पर राज्यश्री का कुछ समाचार न मिला। एक दिन उसे पता लगा कि यहां से एक कोस पर पहाड़ की जड़ में, वृक्षों के घने झुरमुट में दिवाकरमित्र नामक भिक्षु अपने शिष्यों के साथ रहते हैं। शायद उसे खबर लगी हो।

दिवाकरमित्र स्वर्गीय ग्रहवर्मा का बालपन का मित्र था। हर्ष कई बार उसकी प्रशंसा सुनकर उससे भेंट करने की बात मन में ला चुका था। वह तुरंत उससे मिलने चला। वहां उसने वृक्षों के बीच में बैठे हुए दिवाकरमित्र को देखा और दूर से ही उसे प्रणाम किया। दिवाकरमित्र के आसन के दोनों ओर दो शेर के बच्चे बैठे थे। बायें हाथ से वह कबूतर के बच्चे को जंगली चावल चुगा रहा था। उसने हर्ष को देखकर उचित आवभगत से उसका

स्वागत किया और विन्ध्याटवी में आने का कारण पूछा। हर्ष ने कहा, "मेरे परिवार के सब इष्ट व्यक्तियों के नष्ट हो जाने पर मेरे जीवन का एकमात्र सहारा मेरी छोटी बहन बची थी। पति-वियोग हो जाने के बाद वह भी शत्रु के भय से किसी प्रकार बचकर इस वन में आ गई। मैं रात-दिन उसे ढूंढ़ रहा हूँ, पर अभी पता नहीं लगा। यदि किसी वनचर ने आपको कुछ सूचना दी हो तो कृपया बताएँ।" यह सुनकर भदन्त ने दुखी भाव से कहा, "अभी तक ऐसा कोई समाचार मुझे नहीं मिला।" ठीक उसी समय एक भिक्षु ने आकर रोते हुए कहा, "भन्ते, बड़े दुःख का विषय है। बाल-अवस्था की एक सुन्दर स्त्री विपत्ति में पड़ी हुई शोक के आवेग से अग्नि में जलने के लिए तैयार है। कृपया चलकर उसे समझाएं।"

सुनते ही हर्ष को शंका हुई कि वह उसकी बहन ही है। उसने गद्गद् कंठ से पूछा, "वह स्त्री कितनी दूर पर है और क्या हमारे पहुंचने तक वह जीवित मिल सकेगी?"

भिक्षु ने कहा, "महाभाग, आज सवेरे नदी पर घूमते हुए मैंने अनेक स्त्रियों से घिरी हुई और करुण स्वर में विलाप करती हुई एक स्त्री को देखा। उनमें से एक ने कहा, 'यह हमारी स्वामिनी, पिता के मरण, स्वामी के नाश, भाई के प्रवास और अन्य सब बन्धुओं के वियोग से अनाथ हुई, शत्रु द्वारा किये गए पराभव के

दारुण दुःख को न सह सकने के कारण अग्नि में प्रवेश कर रही है । कृपया इसे बचाइए और समझाइए ।' मैंने दुखी होकर कहा, 'यदि तुम इसे मुहूर्त्त भर भी रोक सको तो मेरे गुरु समाचार सुनते ही यहां आकर इसे समझायंगे' ।"

हर्ष ने भिक्षु की बात सुनते ही तुरन्त समझ लिया और दिवाकरमित्र के कान में कहा, "आर्य, दुर्भाग्य से इस बुरी अवस्था को प्राप्त हुई वह मुझ मन्दभाग्य की बहन ही है।" फिर उस दूसरे भिक्षु से कहा, "उठो, और बताओ वह कहां है, जिससे तुरन्त वहां जाकर उसे हम जीवित ही बचा सकें ।"

इसके बाद हर्ष, दिवाकरमित्र और अन्य लोग पैदल उस भिक्षु के पीछे चल पड़े । दूर से ही उन्होंने अनेक स्त्रियों का विलाप सुना । हर्ष तुरंत दौड़कर वहां गया और अग्नि-प्रवेश के लिए तैयार राज्यश्री के ललाट पर हाथ रखकर उसे सहारा दिया । इस अवस्था में सहसा भाई को पास देखकर राज्यश्री ने रोते हुए कहा, "हा पिता ! हा माता !" और बहुत विलाप करने लगी । हर्ष भी देर तक रोते रहे, फिर कहा, "बहन, अब धीरज धरो और अपनेको संभालो ।" आचार्य ने भी कहा, "हे कल्याणी, बड़े भाई की बात मानो ।" शोक जब कुछ कम हुआ तो हर्ष उसे अग्नि के पास से हटाकर दूर ले गए ।

वहां पहले बहन का मुख धोया और फिर अपना। और मन्द स्वर में कहा, "वत्से, भदन्त को प्रणाम करो। ये तुम्हारे पति के दूसरे हृदय और हमारे गुरु हैं।" पति का नाम आते ही राज्यश्री के नेत्रों में फिर जल भर आया। जब उसने प्रणाम किया तो दिवाकरमित्र के नेत्र भी गीले होगए। वह मुँह फेरकर गहरी सांस छोड़ने लगे। फिर क्षण भर रुककर बोले, "अब अधिक रोने से क्या लाभ? स्नान करके सबको फिर आश्रम को चलना चाहिए।" यह सुन हर्ष ने बहन के साथ नदी में स्नान किया और आश्रम में लौटकर ग्रहवर्मा को पिंड देने के बाद पहले बहन को कुछ खिलाया और फिर स्वयं कुछ खाया। तब राज्यश्री से उसकी विपत्तिका सारा हाल सुना।

उसी समय आचार्य दिवाकरमित्र वहां आए और कहने लगे, "श्रीमन्, सुनिए, मुझे कुछ कहना है। वृहस्पति की पत्नी तारा के लिए काम-भाव से व्याकुल चन्द्रमा के जो आँसू समुद्र में गिरे, उन्हें सीपियों ने पी लिया और वे सुन्दर मोती बन गए। उन मोतियों को पाताल के वासुकी नाग ने किसी तरह पाकर यह एक लड़ी माला बनाई थी, जिसका नाम मन्दाकिनी है। भिक्षु नागार्जुन जब पाताल गए तो वासुकी से वह माला उन्होंने प्राप्त की और सातवाहन नाम के राजा को दी। उसी माला को कृपया आप स्वीकार करें।"

हर्ष ने उसे लेकर प्रेम के साथ कहा "ऐसे रत्न मनुष्यों को नहीं मिलते। मैं अब आर्य के वश में हूँ।"

कुछ समय बीतने पर राज्यश्री ने सखी के मुख से हर्ष से गेरुआ वस्त्र धारण करने की आज्ञा मांगी। हर्ष तो चुप रहे, पर दिवाकरमित्र ने धीरे स्वर में कहा, "आयुष्मति, शोक कभी न बुझनेवाली अग्नि है। अपने सुकुमार मन को विवेक का सहारा दो। पिता के समान तुम्हारा यह बड़ा भाई ही अब तुम्हारा गुरु है। जो यह कहे वही करो।" हर्ष ने कहा, "आर्य, एक याचना करता हूँ। इस दुखिया छोटी बहन का लालन मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु मैं शत्रु-कुल के नाश की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। जबतक मैं अपने आपको उस बोझे से हलका न कर लूँ तबतक मैं चाहता हूं कि आप मेरी इस बहन को अपनी शरण में लें। अपने उस काम से छुट्टी पाकर यह और मैं एक साथ गेरुआ वस्त्र धारण करेंगे।" उत्तर में भदन्त ने फिर कहा, "भाग्यशाली को दो बार कहने की आवश्य-कता नहीं। छोटे या बड़े जिस काम में मेरा उपयोग हो सके, मैं आपके अधीन हूं।"

उस रात को हर्ष वहीं रहे। अगले दिन आचार्य और राज्यश्री को साथ लेकर कुछ पड़ाव करने के बाद गंगा-तट पर अपने कटक में लौट आए।

इस प्रकार हर्षचरित की यह कहानी समाप्त हुई।

'संस्कृत-साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्षचरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमारचरित—१
१५. दशकुमारचरित —२
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालती-माधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्धचरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१२

छः आना